



## मनस्तत्त्व अध्ययन योगवासिष्ठ के सन्दर्भ में

अनिल कुमार

शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत।

### प्रस्तावना

योगवासिष्ठ भारतीय अद्वैत वेदान्त दर्शन का सर्वोत्कृष्ट तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें भारतीय दर्शन एवं मान्यताओं का समस्त सार समाहित है। इस ग्रन्थ के विषय में स्वयं ग्रन्थकार महर्षि वाल्मीकि ने कहा है कि जो बाते इस ग्रन्थ में हैं वे अन्य ग्रन्थों में भी मिलेगी। किन्तु जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं मिलेगी।<sup>1</sup> मेरे शोध-पत्र का विषय "मनस्तत्त्व अध्ययन योगवासिष्ठ के सन्दर्भ में" है। योगवासिष्ठ के अनुसार मन एक विशिष्ट तत्त्व है। मनः शब्द मन् धातु से मनयतेबुध्यतेऽनेनेति अर्थों में असुन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।<sup>2</sup> वेदान्तसार के अनुसार यह मन लिंगशरीर का अवयव विशेष है। लिंगशरीर सप्तदश अवयवों वाला है, इसे ही सुक्ष्मशरीर भी कहा जाता है। सप्तदश अवयवों में यह मन संकल्पविकल्प करने वाला अन्तःकरण की वृत्ति कहा गया है।<sup>3</sup> श्रीमद्भगवद्गीता में यह मन सभी इन्द्रियों में श्रेष्ठ माना गया है।<sup>4</sup> योगवासिष्ठ के अनुसार इस मन की उत्पत्ति परमकारण से ही हुई है। इसी मन को ब्रह्म कहा जाता है। इस संसार में जो कुछ भी भोग्य पदार्थ है वे सब मनोमय ही हैं। तथा जो कुछ दृश्य पदार्थ है वे मन में ही स्थित हैं।<sup>5</sup> इस संसार में एकमात्र मन ही दुःखरूपी वृक्ष का मूल है अर्थात् समस्त दुःखरूपी वृक्षों के अंकुर मन में ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए यह मन जब तक विद्यमान है तब तक दुःख का विनाश नहीं हो सकता और इस मन के अस्त हो जाने पर यह संसार भी स्वतः ही अस्त हो जाता है।<sup>6</sup>

### मन स्वरूप तथा स्वभाव

योगवासिष्ठ में संकल्प को ही मन कहा गया है। संकल्प से तात्पर्य मन के स्पन्दन तथा मनन से है। जैसे द्रवत्व से जल का और वायु से स्पन्द का भेद नहीं किया जा सकता है वैसे ही संकल्प से मन का भेद भी नहीं किया जा सकता है। मन में जिस विषय का संकल्प होता है, उसमें मन संकल्परूप से स्थित रहता है। इसलिए जो संकल्प है वही मन है संकल्प तथा मन का कोई भेद नहीं किया जा सकता है।<sup>7</sup> यहां मन जड़ाजड़ स्वरूप भी माना गया है। यह मन ब्रह्मरूप होने के कारण अजड़ तथा दृश्यरूप होने से जड़ है।<sup>8</sup> योगवासिष्ठ के अनुसार यह मन चंचल स्वभाव वाला है।<sup>9</sup> अपने चंचल स्वभाव के कारण यह मन किसी भी विषय पर स्थिरता के साथ नहीं टिकता है। यह इतना चंचल है कि क्षणमात्र के लिए भी किसी एक विषय में लगाया हुआ वैसे ही स्थिरता को प्राप्त नहीं होता है जैसे तरंगों में बहाया हुआ पत्ता स्थिरता को प्राप्त नहीं होता है।<sup>10</sup> इस संसार में कहीं पर भी चंचलता से हीन मन नहीं दिखाई देता क्योंकि चंचलता मन का धर्म है।<sup>11</sup> चंचल स्वभाव के कारण यह मन जिस जिस वस्तु की भावना करता है शीघ्र ही तत्स्वरूपता को प्राप्त हो जाता है। इस संसार में भाव, अभाव, उपादान त्याग आदि प्रतीतियां जो भी चेतन में कल्पित होती हैं, वे न तो सत्य हैं न ही असत्य हैं। चेतन में इन प्रतीतियों का कारण

मन ही है। मन की चंचलता के कारण ही इनकी प्रतीति होती है।<sup>12</sup> मन का यह चंचल स्वभाव गीता में भी वर्णित किया गया है।<sup>13</sup>

### मन की सत्ता तथा कार्य

तीनों भूवनों में मन का विषयों से संसर्ग होना ही मन की सत्ता है। इस मन का कोई रूप नहीं है। शरीर के बाहर और भीतर हृदय में यह मन कहीं भी सद्रूप विद्यमान नहीं है। किंतु जिस प्रकार आकाश सर्वत्र विद्यमान है, उसी प्रकार इसको भी सर्वत्र विद्यमान जानना चाहिए।<sup>14</sup> इस संसार में न कोई मरण को प्राप्त होता है और न ही उत्पन्न होता है। यहां पर मन ही अपने मरण की कल्पना कर मृत्यु को प्राप्त होता है। तथा लोकगमन की कल्पना कर उत्पन्न होता है। इस लोक से यह मन परलोक में जाता है और वहां अन्य रूप में स्फुरित होता है, ये मरण तथा परलोकगमन मन को तब तक प्राप्त होते हैं जब तक मोक्ष नहीं हो जाता।<sup>16</sup> इस संसार में भ्रमण करना गमनागमन करना, सांसारिक दशाप्रयुक्त अपकर्षों को प्राप्त होना ये सब मन की ही क्रियाएं हैं अर्थात् मन ही इन सब दशाओं को प्राप्त होता है क्योंकि एकमात्र मन ही इस संसार में विकल्पों का कर्ता है।<sup>17</sup> मन जब देखता है तो नेत्र बन जाता है, सुनता है तो कान बन जाता है, स्पर्श का अनुभव करने से वही त्वगिन्द्रिय का रूप ग्रहण करता है, सूंघने से यही मन घ्राणेंद्रिय तथा रसास्वादन करने से रसनेन्द्रिय हो जाता है। यह मन पलभर में ही बड़े पदार्थ को छोटा तथा छोटे पदार्थ को बड़ा, सत्य पदार्थ में असत्यता तथा असत्य पदार्थों में सत्यता, स्वादिष्ट वस्तु को कटु तथा कटु को स्वादिष्ट और शत्रु को मित्र तथा मित्र को शत्रु बना डालता है।<sup>18</sup> मन की भावनाएं बड़े से बड़े दुःखों को सुख बनाने के लिए तथा सुखों को दुःख बनाने के लिए अनायास ही समर्थ होती हैं। मन के साथ होने से ही सभी कार्य निर्बाध पूर्ण हो जाते हैं परन्तु यदि मन कहीं और जगह उलझा है तो बड़े जतन से कही जा रही कथा भी ऐसे छिन्न भिन्न हो जाती है जैसे परशु से काटी लता छिन्न भिन्न हो जाती है।<sup>19</sup> इस प्रकार संसार के समस्त कार्य मन के द्वारा ही क्रियान्वित होते हैं।

### मन का इन्द्रिय, देह तथा प्राण से सम्बन्ध

इन्द्रियों को ही विद्वानों के द्वारा हस्तपादादि रूप देह कहा जाता है। संकल्पयुक्त बुद्धि जब मन का स्थान लेती है तो यह मन धीरे-धीरे इन्द्रियता को प्राप्त हो जाता है।<sup>20</sup> नाटक में जैसे एक ही नट वेशभूषा के परिवर्तन से नाना आकारों को प्राप्त होता है वैसे ही देह में यह मन ही इन्द्रियों के रूप में प्रतीत होता है। यह मन जब देखता है तो चक्षु हो जाता है, सुनता है तो श्रोतता को प्राप्त हो जाता है, स्पर्श करने पर त्वग्भाव को प्राप्त होता है, सुंघने पर घ्राणता तथा रस का स्वाद लेने से जिह्वा बन जाता है।<sup>21</sup> अतः इन्द्रियों की उत्पत्ति मन से ही हुई है।<sup>22</sup> इसलिए समस्त इन्द्रियां मन के अधीन होती हैं, और मनानुसार ही व्यवहारों में त्याग एवं

ग्रहण में प्रवृत्त होती है। समस्त इन्द्रियों का अधिष्ठता यह मन स्वयं सब व्यवहार में स्वतन्त्र ही रहता है।<sup>123</sup> योगवासिष्ठ के अनुसार यह रक्तमांसादि रूप देह मन के द्वारा ही कल्पित है। जैसे बालक अपने संकल्प से यक्ष की कल्पना करता है वैसे ही मन भी अपने संकल्प से अपने निवास के लिए देह की कल्पना करता है।<sup>124</sup> शरीर के उत्पन्न हो जाने पर यह मन ही भोजनादि की कल्पना कर इसे पुष्ट करता है।<sup>125</sup> मन के द्वारा कल्पित तथा पोषित यह शरीर मन का वशवर्ती होता है इसलिए मन जिस प्रकार के भावों से युक्त होता है शरीर भी तन्मय हो जाता है।<sup>126</sup>

मन तथा देह में मन ही कर्ता है, क्योंकि देह मन के अनुसार ही कार्य करता है और कर्मेन्द्रियां भी मनानुसार ही त्याग तथा ग्रहण में प्रवृत्त होती है। इस देह में मन ही उदय को प्राप्त होता है, रोता है, मरता है, खाता है, जाता है और निदा करता है देह कभी भी कुछ नहीं करता है।<sup>127</sup> इसलिए इन दोनों में मन ही कर्ता है देह नहीं।<sup>128</sup> यह मन तथा देह परस्पर विरोधी स्वभाव वाले हैं क्योंकि मन की चंचलता के कारण जो भी दुःख उत्पन्न होते हैं उनका भोग शरीर को करना पड़ता है, और वह शरीर उन दुःखों से तापित होकर मन को मारने की इच्छा करता है। परस्पर विरोधी स्वभाव के होने के कारण इनके संगत होने से कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।<sup>129</sup> इसलिए सुख चाहने वाले व्यक्ति को हमेशा ही मन के नाश के लिए प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि मन के नाश होने से यह देह स्वयं ही नष्ट हो जाता है, परन्तु देह के नाश होने पर यह मन कभी भी नष्ट नहीं होता है। यह मन अपने संकल्प से एक देह के नाश हो जाने पर पुनः देह की कल्पना कर नये शरीर को प्राप्त कर लेता है।<sup>130</sup> अतः सुख की कामना करने वाले पुरुष को निरन्तर मनोनाश के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

इन्द्रिय तथा शरीर के समान ही प्राणों का भी मन से सम्बन्ध होता है। योगवासिष्ठ के अनुसार यह मन प्राणों के द्वारा ही मनन करता है अर्थात् चलायमान होता है।<sup>131</sup> इसलिए प्राणों को मन का रथ कहा गया है।<sup>132</sup> जहां पर प्राण निवास करता है वहीं पर मननात्मक संकल्प की स्थिति रहती है अर्थात् जहां पर वायु जाता है वही पर मन रहता है।<sup>133</sup> प्राण तथा मन ये दोनों परस्पर अविनाभूत हैं। दोनों में से एक के रहने पर दूसरा भी स्थित रहता है तथा एक के शान्त हो जाने पर दूसरा भी शान्त हो जाता है। प्राणवायु के शान्त हो जाने पर मन भी कम्पित नहीं होता तथा मन के हृदय आकाश में विलीन हो जाने पर प्राणवायु भी वैसे ही कम्पित नहीं होता जैसे तेज का अभाव होने पर रूप प्रकाशित नहीं होता।<sup>134</sup> इस प्रकार मन तथा प्राणवायु दोनों परस्पर अविनाभूत हैं।

### मन तथा जगत्

योगवासिष्ठ के अनुसार अणु से महत् पर्यन्त जितना भी स्थावर जंगम जगत् दृष्टिगोचर होता है वह सब मन के द्वारा ही कल्पित है।<sup>135</sup> पदार्थ के आदिरूप से ब्रह्माण्ड के सर्वरूप तक यह मन ही वृद्धि को प्राप्त होता है अर्थात् जगत् विस्तार के रूप में मन ही विस्तार को प्राप्त होता है और भूमि, वायु, आकाश तथा महत्त्व के रूप में व्याप्त होता है।<sup>136</sup> इस संसार का प्रत्येक पदार्थ मन के कारण ही अपने अपने कार्यों को करने में समर्थ होता है। यदि मन सूर्य आदि पदार्थों में प्रकाशादिरूप से युक्त न हो तो, सूर्योदय होने पर भी ये प्रकाश आदि कार्य कदापि नहीं हो सकते। इस प्रकार जगत् के सम्पूर्ण कार्यों में मन ही कारण होता है।<sup>137</sup>

मन के कारण ही यह असद्रूप जगत् सद्रूप प्रतीत होता है क्योंकि जगद्रूप भ्रान्ति का कारण यह मन ही है। यह संसार मनरूपी ब्रह्म निर्मित है इसलिए प्रलयकाल में यह मन में ही लीन हो जायेगा

क्योंकि जो वस्तु जिस कारण से उत्पन्न होती है प्रलयकाल में वह उसी में लीन हो जाती है इसलिए यह संसार भी एक दिन नाश को प्राप्त हो जायेगा। अतः यह असत् है, परन्तु मन के कारण यह असत् जगत् भी सत् प्रतीत होता है। इसलिए मन ही इस जगद्रूप भ्रान्ति का कारण है।<sup>138</sup> यह मनोत्पन्न असद्रूप जगत् तब तक ही व्याप्त होता है जब तक मन की सत्ता रहती है, मन के नष्ट हो जाने पर यह जगत् भी स्वयं ही नष्ट हो जाता है।<sup>139</sup> इस प्रकार जगद्भ्रान्ति के निवारण के लिए मनोनाश का प्रयत्न करना चाहिए।

### मनोनिग्रह

मनुष्य के शरीर में मन सबसे महत्वपूर्ण तत्व है मन के जीत लेने पर समस्त इन्द्रियां भी वश में आ जाती है परन्तु यदि मन में विकार आ जाये तो मनोव्याधि के उपद्रवों से चिरकाल से पूजित देवता भी नहीं बचा सकते हैं।<sup>140</sup> यह मन अग्नि से भी अधिक उष्ण, पर्वत से भी अधिक दूरारोह तथा वज्र से भी बढ़कर कठोर है इसलिए यह मनरूपी ग्रह दुःख से भी गृहित नहीं हो सकता।<sup>141</sup> अर्थात् इसे कठिन तप से भी वश में नहीं किया जा सकता। गीता में भी इस चंचल मन को वश में करना दुष्कर बताया गया है।<sup>142</sup> इस मन को वश में किये बिना मोक्षप्राप्ति के लिए किये जाने वाले गुरुउपदेश, शास्त्राभ्यास तथा मन्त्रादि साधन तृण के तुल्य असार हैं।<sup>143</sup> योगवासिष्ठ में मन को वश में करने के लिए संतोष<sup>144</sup> योगांगो<sup>145</sup> का अनुष्ठान तथा पुरुष प्रयत्न जैसे उपायों का वर्णन किया गया है। इनमें से पुरुष प्रयत्न के द्वारा ही मन को शीघ्रता से जीता जा सकता है।<sup>146</sup> भगवान कृष्ण ने भी मन को वश में करने के लिए अभ्यास तथा वैराग्य को प्रबल साधन माना है।<sup>147</sup> मन को वश में करने के अभ्यास से पूर्व साधक को शास्त्रों के अभ्यास प्रबल वैराग्य तथा सज्जनों के संग से मन को ज्ञानोदय के योग्य बनाने वाली विशुद्धि को प्राप्त करना चाहिए।<sup>148</sup> और फिर जो अविनाशी है, मन के लिए सदा हितकर है, अबाधित स्वरूप है, आदि मध्य तथा अन्त इन तीनों अवस्थाओं में अनुस्यूत है तथा जिसकी समस्त संत लोग प्रीतिपूर्वक उपासना करते हैं, जो बुद्धि से परे है प्रकाश स्वरूप है, सबका आदिकरण है, निरतिशय अमृतस्वरूप है तथा जिसकी अपेक्षा दूसरा उत्तम सौभाग्य नहीं है उस परमतत्व में मन को स्थिर करना चाहिए।<sup>149</sup> मनोनिग्रह होने पर क्षीण होता हुआ यह मन उत्तमानन्द को देने वाला होता है और मन के जीत लेने पर त्रिलोकी विजय भी तृण सदृश सहज हो जाती है।<sup>150</sup>

### मनोनाश

इस संसार में समस्त दुःखों का कारण एकमात्र मन ही है इसलिए इन दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति का उपाय मनोनाश ही है। मनोनाश के निमित्त योगवासिष्ठ में कहा गया है कि मन के नाश का उपाय खोज रहे विवेकी पुरुषों को तपस्या आदि क्लेश उपयोगी नहीं है अर्थात् मनोनाश के लिए इनकी साधना करना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह मन संकल्प से ही उत्पन्न होता है तथा संकल्प से ही मरता है।<sup>151</sup> इसलिए मनोनाश को मन के संकल्प से ही सिद्ध किया जा सकता है। जैसे पेड़ के अवयवभूत काष्ठरूप कुल्हाड़े से पेड़ को काटा जाता है वैसे ही मन के द्वारा ही मन का विनाश किया जा सकता है।<sup>152</sup> योगवासिष्ठकार कहते हैं कि भवभावना में लगा हुआ यह मन यदि मन से ही नहीं उबारता जाता है तो उसको उबारने का अन्य कोई उपाय इस संसार में नहीं है।<sup>153</sup> योगवासिष्ठ के अनुसार दृश्य की अत्यन्त असंभावना, प्राणों के निरोध तथा कर्मों के नाश से भी मन के नाश का वर्णन किया गया है अर्थात् इन उपायों से भी मन का विनाश किया जा सकता है। इस मन के नाश हो जाने पर व्यक्ति समस्त दुःखों से मुक्त होकर आत्म

साक्षात्कार को प्राप्त हो जाता है।<sup>154</sup>

इस प्रकार योगवासिष्ठ में यह मन एक महत्वपूर्ण तत्त्व के रूप में वर्णित है। यह परमकारण से उत्पन्न होता है तथा इस संसार की उत्पत्ति तथा विकास का कारण है। मन के रहने पर ही यह संसार स्थित रहता है तथा मन के नाश हो जाने पर यह भी विनाश को प्राप्त हो जाता है। मन से ही मनुष्य का देह उत्पन्न हुआ है तथा मन के कारण ही दुःखों को प्राप्त होता है। अतः मन के विषय में ठीक ही कहा गया है कि यह मन ही मनुष्यों के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है।<sup>155</sup> इस प्रकार योगवासिष्ठ में यह मन एक विशिष्ट तत्त्व के रूप में वर्णित किया गया है।

### संदर्भ सूची

1. यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्त्वचित् ।।  
योगवासिष्ठ, 3-18-12
2. शब्दकल्पद्रुम् । पृष्ठ संख्या, 606
3. वेदान्तसार ।
4. इन्द्रियाणां मनश्चास्मि । श्रीमद् भगवद्गीता, 10-22
5. मनो ब्रह्मेति कथ्यते । योगवासिष्ठ, 3-2-54
6. विद्यमानं मनो यावत्तावद् दुःखक्षयः कुतः  
मनस्यस्तगते जन्तोः संसारोऽस्तमुपागतः ।। वही, 5-90-8
7. संकल्पनं मनो विद्धि संकल्पात्तन्न भिद्यते ।  
यथा द्रवत्वात् सलिलं तथा स्पन्दो यथाऽनिलात् ।।  
यत्र संकल्पनं तत्र तन्मनोऽङ्गं तथा स्थितम् ।  
संकल्पमनसी भिन्ने न कदाचन केनचित् ।। वही, 3-4-43,44
8. जडाजडं मनो विद्धि संकल्पात्म बृहद्वपुः ।  
अजडं ब्रह्मरूपत्वाज्जडं दृश्यात्मतावशात् ।। वही, 3-91-31
9. मनः प्रकृत्यैव चलम् । वही, 1-19-14
10. अहो नु चंचलमिदं प्रत्याहतमपि क्षणात् न मनः स्थैर्यमायाति  
तरंगप्रौढर्णवत् ।। वही, 5-82-12
11. नेह चंचलताहीनं मनः क्वचन दृश्यते । चंचलत्वं मनोधर्मो  
बह्नेधर्मो यथोष्णता ।। वही, 3-112-5
12. भावाभावग्रहोत्सर्गदृशश्चेतनकल्पिताः । नाऽसत्या नापि सत्यास्ता  
मनश्चापलकारिताः ।। वही, 4-20-3
13. चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथिबलवदृढम् । गीता, 6-34
14. मनोमननशालिन्याः सत्ताया भुवनत्रये । वही, 1-31-16
15. न बाह्ये नाऽपि हृदये सद्रूपं विद्यते मनः । सर्वत्रैव स्थितं  
चैतद्विद्धि राम यथा नभः ।। वही, 3-4-39
16. न कश्चनेह म्रियते जायते न च कश्चन ।  
स्वयं वेति मृतं स्वस्य लोकमन्यं स्वकं मनः ।।  
इतो याति परं लोकं स्फुरत्यन्यतया मनः ।  
तत्तस्यैत्येतदामोक्षमतो मृतिभयं कुतः ।। वही, 3-111-26,27
17. करोत्येवं मनो राम विकल्पं कुरुते जगत् ।। वही, 3-103-10
18. मनः पश्यद् भवत्यक्षि शृष्वच्छवणतां गतम् ।  
त्वग्भावं स्पर्शनादेति घ्राणतामेति जिघ्रणात् ।।  
रसनाद्रसतामेति विचित्रास्तत्र वृत्तिषु ।  
नाटके नटवद्देहे मन एवाऽनुवर्तते ।।  
लघु दीर्घं करोत्येव सत्येऽसत्तां प्रयच्छति ।  
कटुतां नयति स्वादु रिपुं नयति मित्रताम् ।। वही,  
3-110-18,19,20
19. सुखीकर्तुं सुदुःखानि दुःखीकर्तुं सुखानि च ।  
सुखेनैवाऽऽशु युज्यन्ते मनसोऽतिशया मुनेः ।।  
मनस्यन्यत्र संसक्ते कथ्यमानाऽपि यन्तः ।  
लता परशुकृत्तेव कथा विच्छिद्यते बत ।। वही, 3-110-40,41

20. बुद्धिः संकल्पकलिता प्रयाति मनसः पदम् ।  
मनो घनविकल्पं तु गच्छतीन्द्रियतां शनैः ।। वही, 4-42-24
21. मनः पश्यद् — एवाऽनुवर्तते ।। वही, 3-110-18-19
22. इन्द्रियाणि प्रसूतानि मनसो नेन्द्रियान्मनः । वही, 3-110-36
23. यदापां स्वयमादत्तं यथैव चंचलं मनः ।  
हस्तपादादिसघातस्तदा प्रयतते तथा ।। वही, 3-103-8
24. मनसा कल्पितं सर्वं देहादिभुवनत्रयम् ।  
संस्मृतौ कारणं चैतच्चक्षुरालोकने यथा ।। वही, 4-45-5,6,7
25. संकल्पेन मनः पुष्ट्वा शरीरं बालयक्षवत् ।  
आयुरेवाऽरानान्यस्मै स्वदुःखानि प्रयच्छति ।। वही, 5-53-56
26. यन्मयं हि मनो राम देहस्तदनु तद्वशः ।  
तत्तामायाति गन्धान्तः पवनो गन्धतामिव ।। वही, 4-21-16
27. उदेति रौति हन्यति याति वल्गति निन्दति ।  
मन एव शरीरेऽस्मिन्न शरीरं कदाचन ।। वही, 3-115-22
28. मनो यत्करोति तत्कृतं भवति यन्न करोति  
तन्न कृतं भवति अतो मन एवं कर्ता न देहः ।। वही, 4-38-7
29. एवं मिथो दुःखदयोः शिल्पयोः कः सुखगमः ।  
एतयोर्देहमनसोर्जात्यैवाऽतिविरुद्धयोः ।। वही, 5-53-60
30. क्षीयते मनसि क्षीणे देहः प्रक्षीणवासनः ।  
मनो न क्षीयते क्षीणे देहे तत् क्षययन्मनः ।। वही, 5-53-66
31. मनः प्राणवशादेव मनुते- । वही, 6-2-139-23
32. मनसस्तु रथः प्राणः । वही, 6-1-31-40
33. यत्र प्राणो मरुद्याति मनस्तत्रैव तिष्ठति ।  
यत्र यत्राऽनुसरति रथस्तत्रैव सारथिः ।। वही, 6-1-31-47
34. मनस्याकाशसंलीने न प्राणः परिवेपति ।  
तेजस्यसत्तामायाते न रूपमिव राजते ।।  
प्राणे प्रशान्ते मरुति मनोऽन्तर्न मनागपि ।  
वात्यायामुपशान्तायां रजो न परिकम्पते ।। वही, 6-1-31-45,46
35. मनो हि जगतां कर्तुं मनो हि पुरुषः परः ।  
मनः कर्तुं कृतं लोके न शरीरकृतं कृतम् ।। वही, 3-89-1
36. मनोमात्रं जगत् कृत्स्नं मनः पर्यन्तमण्डलम् ।  
मनो व्योम मनो भूमिर्मनो वायुर्मनो महान् ।। वही, 3-110-15
37. मनो यदि पदार्थं तु तद् भावेन न योजयेत् ।  
ततः सूर्योदयेऽप्येते न प्रकाशाः कदाचन ।। वही, 3-110-16
38. असदेव मनोराज्यं कर्तुं शक्तं यथा मनः ।  
क्षणस्य कल्पीकरणे तथैव बलवन्मनः ।।  
— जगज्जालमिति स्थितम् ।। वही, 6-1-56-22,23,24
39. मनो जगज्जगदखिलं तथा मनः  
परस्परं त्वविरहिते सदैव हि ।  
तयोद्वयोर्मनसि निरन्तरं क्षिते  
क्षितं जगन्न तु जगति क्षिते मनः ।। वही, 4-4-15
40. ब्रह्मविष्विन्द्ररुद्राद्याश्चिरसंपूजिता अपि ।  
उपप्लवान्मोव्याधेर्न त्रायन्तेऽपि वत्सलाः ।। वही, 5-43-38
41. वह्नेरुष्णतरः शैलादपि कष्टतरक्रमः ।  
वज्रादपि दृढो ब्रह्मन् दुर्निग्रहमनोग्रहः ।। वही, 1-16-21
42. चंचलं हि मनः कृष्ण । गीता, 6-34
43. ईप्सितावेदनाख्यात्तु मनः प्रशमनादृते ।  
गुरुपदेशशास्त्रार्थमन्त्राद्या युक्त्यस्तृणम् ।। वही, 3-111-14
44. सन्तोषमात्रं विभवेन मनो विजित्य । वही, 3-111-45
45. मनः सर्पः शरीरस्थो यावतावन्महद् भयम् ।  
तस्मिन्नुत्सारिते योगाद् भयस्याऽवसरः कुतः ।। वही, 5-14-63
46. संवेदनविपर्यासरूपिणी धीरिवाऽचला ।  
जेतुमाशु मनो राम पौरुषेणैव शक्यते ।। वही, 3-111-21

47. असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं ।  
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ गीता,6-35
48. पूर्वं राघव शास्त्रेण वैराग्येण परेण च ।  
तथा सज्जनसंगेन नीयतां पुण्यतां मनः ॥ वही, 5-5-14
49. आभास्ति विपुलार्थानि ----- कारयेन्मनः ॥ वही,  
6-1-23-19,20,21
50. अनुद्वेगः श्रियो मूलमनुद्वेगात् प्रवर्तते ।  
जन्तोर्मनोजयो येन त्रिलोकीविजयस्तृणम् ॥ वही, 3-11-22
51. संकल्पतः प्रतियते संकल्पाज्जायते पुनः ।  
मनश्चिरन्तना भ्यस्ता ज्जीवता मेल्यनाकृति ॥ वही, 3-110-55
52. मनसैव मनश्छित्वा कुठारेणेव पदापम् ॥ वही, 5-13-35
53. भवभावनया मग्नं मनसैव न चेन्मनः ।  
बलादुत्तार्यते राम तदुपायोऽस्ति नेतरः ॥ वही, 3-112-18
54. मनोमारणमात्रेण साध्येन स्वात्मसंविदा । वही, 3-111-13
55. मनो हि मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो ॥ ब्रह्मबिन्दु 2-3